

यस्य चित्ते न विश्वासो धर्मे श्रीजिनभाषिते। तस्य किं कुशलं लोके महादुष्कर्मकारिणः ॥२१॥
 मिथ्यात्वेन समं किंचिन्नित्यं न भुवनत्रये। यतोऽसौ चक्रवर्ती च सप्तमं नरकं गतः ॥२२॥
 तस्मात्तद्दूरतस्त्यक्त्वा मिथ्यात्वं वान्तिवद्बुधाः। स्वमोक्षसाधने हेतुं सम्यक्त्वं भावयन्तु वै ॥२३॥
 देवोर्हन्भुवनत्रयेऽत्र नितरां दोषौघसङ्गोज्झितो देवेन्द्रार्कनरेन्द्रखेचरशतैर्भक्त्या सदाभ्यर्चितः।
 तद्वाक्यं भवसागरप्रवहणप्रायं महाशर्मदं नित्यं चेतसि भावितं च भवतां कुर्याद्वरं मङ्गलम् ॥२४॥
 इति कथाकोशे ब्रह्मदत्तचक्रिणः कथा समाप्ता।

१९. श्रीश्रेणिकनृपस्य कथा

नत्वा जिनं जगत्पूज्यं केवलज्ञानलोचनम्। वक्ष्ये श्रीश्रेणिकस्योच्चैः सत्कथां श्रेयसे नृणाम् ॥१॥
 देशेऽत्र मगधे ख्याते पुरे राजगृहे परे। राजा श्रीश्रेणिकस्तत्र राजविद्याविराजितः ॥२॥
 तद्राज्ञी चेलिनी नाम्नी सम्यग्दृष्टिर्विचक्षणा। श्रीमज्जिनेन्द्रपादाब्ज-पूजनैकपरायणा ॥३॥
 एकदा श्रेणिकेनोक्तं शृणु त्वं देवि वक्ष्यहम्। सर्वधर्मप्रधानोयं विष्णुधर्मोऽत्र वर्तते ॥४॥
 अतस्त्वया रतिः कार्या तत्रैवाशु सुखप्रदे। तदाकर्ण्य प्रभोर्वाक्यं जैनतत्त्वेषु निश्चला ॥५॥
 चेलना विनयोपेता संजगाद प्रियं वचः। भो देव विष्णुभक्तानां भोजनं दीयते मया ॥६॥

संसार में और कोई इतना निन्द्य नहीं है। उसी से तो चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त सातवें नरक गया। इसलिए आत्महित के चाहने वाले पुरुषों को दूर से मिथ्यात्व छोड़कर स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति का कारण सम्यक्त्व ग्रहण करना उचित है ॥१४-२३॥

संसार में सच्चे देव अरहन्त भगवान् हैं, जो क्षुधा, तृषा, जन्म, मरण, रोग, शोक, चिन्ता, भय आदि दोषों से और धन-धान्य, दासी-दास, सोना-चाँदी आदि दस प्रकार के परिग्रह से रहित हैं, जो इन्द्र, चक्रवर्ती, देव, विद्याधरों द्वारा बंध हैं, जिनके वचन जीव मात्र को सुख देने वाले और भव समुद्र से तिरने के लिए जहाज समान हैं, उन अर्हन्त भगवान् का आप पवित्र भावों से सदा ध्यान किया कीजिए कि जिससे वे आपके लिए कल्याण पथ के प्रदर्शक हो ॥२४॥

१९. श्रेणिक राजा की कथा

केवलज्ञानरूपी नेत्र के द्वारा समस्त संसार के पदार्थों के देखने, जानने वाले और जगत्पूज्य श्री जिनभगवान् को नमस्कार कर मैं राजा श्रेणिक की कथा लिखता हूँ, जिसके पढ़ने से सर्वसाधारण का हित हो। श्रेणिक मगध देश के अधीश्वर थे। मगध की प्रधान राजधानी राजगृह थी। श्रेणिक कई विषयों के सिवा राजनीति के बहुत अच्छे विद्वान् थे। उनकी महारानी चेलना बड़ी धर्मात्मा, जिनभगवान् की भक्त और सम्यग्दर्शन से विभूषित थी। एक दिन श्रेणिक ने उससे कहा-देखो, संसार में वैष्णव धर्म की बहुत प्रतिष्ठा है और वह जैसा सुख देने वाला है वैसा और धर्म नहीं। इसलिए तुम्हें भी उसी धर्म का आश्रय स्वीकार करना उचित है। सुनकर चेलना देवी, जिसे कि जिनधर्म पर अगाध विश्वास था, बड़े विनय से बोली-नाथ, अच्छी बात है, समय पाकर मैं इस विषय की परीक्षा करूँगी ॥१-६॥

अथैकदा समाहूय भोजनार्थं स्वमण्डपे। गौरवात्स्थापयामास सर्वाभ्यागवतान्सती ॥७॥
 तत्र ते कपटोपेताः शठा ध्यानेन संस्थिताः। पृष्ठास्तथा भवन्तोऽत्र किं कुर्वन्ति तपस्विनः ॥८॥
 इत्याकर्ण्य जगुस्तेऽपि त्यक्त्वा देहं मलैर्भृतम्। जीवं विष्णुपदं नीत्वा तिष्ठामो देवि सौख्यतः ॥९॥
 ततस्तथा महादेव्या चेलिन्या सोपि मण्डपः। प्रज्वलितोग्निना नष्टाः कष्टास्ते वायसा यथा ॥१०॥
 राज्ञा रुष्टेन सा प्रोक्ता भक्तिर्नास्ति यदि ध्रुवम्। किं ते मारयितुं चैतान्युक्तं कष्टात्तपस्विनः ॥११॥
 तयोक्तं देव भो त्यक्त्वा कुत्सितं स्ववपुर्द्रुतम्। एते विष्णुपदं प्राप्ताः सारसौख्यसमन्वितम् ॥१२॥
 नित्यं तत्रैव तिष्ठन्ति किमत्रागमनेन च। इति ज्ञात्वोपकाराय मयेदं निर्मितं प्रभो ॥१३॥
 अस्त्येव मम वाक्यस्य निश्चयार्थं महीपते। सद्दृष्टान्तकथां वक्ष्ये श्रूयतां परमादरात् ॥१४॥
 “वत्सदेशे सुविख्याते कौशाम्बीपत्तने प्रभुः। प्रजापालो महाराज्यं करोति स्म स्वलीलया ॥१५॥

इसके कुछ दिनों बाद चेलना ने कुछ भागवत साधुओं का अपने यहाँ निमंत्रण किया और बड़े गौरव के साथ अपने यहाँ उन्हें बुलाया। वहाँ आकर अपना ढोंग दिखलाने के लिए वे कपट मायाचार से ईश्वराराधन करने को बैठे। उस समय चेलना ने उनसे पूछा, आप लोग क्या करते हैं? उत्तर में उन्होंने कहा—देवी, हम लोग मलमूत्रादि अपवित्र वस्तुओं से भरे हुए शरीर को छोड़कर अपने आत्मा को विष्णु अवस्था में प्राप्त कर स्वानुभवजन्य सुख भोगते हैं। सुनकर देवी चेलना ने उस मंडप में, जिसमें सब साधु ध्यान करने को बैठे थे, आग लगवा दी। आग लगते ही वे सब कौआ की तरह भाग खड़े हुए। यह देखकर श्रेणिक ने बड़े क्रोध के साथ चेलना से कहा—आज तुमने साधुओं के साथ बड़ा अनर्थ किया। यदि तुम्हारी उन पर भक्ति नहीं थी, तो क्या उसका यह अर्थ है कि उन्हें जान से मार डालना? बतलाओ तो उन्होंने तुम्हारा क्या अपराध किया, जिससे तुम उनके जीवन की ही प्यासी हो उठी? ॥७-११॥

रानी बोली—नाथ, मैंने तो कोई बुरा काम नहीं किया और जो किया वह उन्हीं के कहे अनुसार उनके लिए सुख का कारण था। मैंने तो केवल परोपकार बुद्धि से ऐसा किया था। जब वे लोग ध्यान करने को बैठे तब मैंने उनसे पूछा कि आप लोग क्या करते हैं? तब उन्होंने मुझे कहा था कि हम अपवित्र शरीर छोड़कर उत्तम सुखमय विष्णुपद प्राप्त करते हैं तब मैंने सोचा कि ओहो, ये जब शरीर छोड़कर विष्णुपद प्राप्त करते हैं तब तो बहुत अच्छा है और इससे उत्तम यह होगा कि यदि ये निरन्तर विष्णु बने रहें। संसार में बार-बार आना और जाना यह इनके पीछे पचड़ा क्यों? यह विचार कर वे निरन्तर विष्णुपद में रहकर सुखभोग करें, इस परोपकार बुद्धि से मैंने मंडप में आग लगवा दी थी। आप ही अब विचार कर बतलाइए कि इसमें मैंने सिवा परोपकार के कौन बुरा काम किया? और सुनिये मेरे वचनों पर आपको विश्वास हो, इसलिए एक कथा भी आपको सुनाये देती हूँ ॥१२-१४॥

“जिस समय की यह कथा है, उस समय वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी के राजा प्रजापाल थे। वे अपना राज्य शासन नीति के साथ करते हुए सुख से समय बिताते थे। कौशाम्बी में दो सेठ

श्रेष्ठी सागरदत्ताख्यो वसुमत्या स्त्रिया युतः। तत्रैव च समुद्रादि दत्तः श्रेष्ठी परोभवत् ॥१६॥
 भार्या समुद्रदत्ताख्या श्रेष्ठिनोश्च तयोर्द्वयोः। महास्नेहवशादुच्चैर्वाचा बन्धोभवद्भुवम् ॥१७॥
 आवयोः पुत्रपुत्र्यौ यौ संजायेते परस्परम्। तयोर्विवाहः कर्त्तव्यो यस्मात्प्रीतिर्भवेत्सदा ॥१८॥
 ततः सागरदत्तस्य वसुमत्यां सुतोभवत्। तिष्ठति स्म गृहे चेति वसुमित्रो महाद्भुतम् ॥१९॥
 तथा समुद्रदत्तस्य नागदत्ता सुताजनि। तस्यां समुद्रदत्तायां रूपलावण्यमण्डिता ॥२०॥
 वसुमित्रेण तेनोच्चैः परिणीता क्रमेण सा। नैव वाचा चलत्वं च सतां कष्टशतैरपि ॥२१॥
 ततश्च वसुमित्रोऽसौ निशायां निजलीलया। धृत्वा पिट्टारके शीघ्रं नित्यं सर्पशरीरकम् ॥२२॥
 भूत्वा दिव्यनरो नाग-दत्तया सह सौख्यतः। भुङ्क्ते भोगान्मनोभीष्टान्विचित्रा संसृतेः स्थितिः ॥२३॥
 एकदा यौवनाक्रान्तां नागदत्तां विलोक्य च। जगौ समुद्रदत्ता सा पुत्री स्नेहेन दुःखिता ॥२४॥
 हा विधेश्चेष्टितं कष्टं कीदृशी मे सुतोत्तमा। वरश्च कीदृशो जातो भीतिकारी भुजङ्गमः ॥२५॥
 तच्छ्रुत्वा नागदत्ताऽऽसौ भो मातर्माविसूरय। समुद्धीर्येति वृत्तान्तं स्वभर्तुः संजगाद च ॥२६॥

रहते थे। उनके नाम थे सागरदत्त और समुद्रदत्त। दोनों सेठों में परस्पर बहुत प्रेम था। उनका प्रेम सदा दृढ़ बना रहे, इसलिए परस्पर में एक शर्त की। वह यह कि, “मेरे यदि पुत्री हुई तो मैं उसका ब्याह तुम्हारे लड़के के साथ कर दूँगा और इसी तरह मेरे पुत्र हुआ तो तुम्हें अपनी लड़की का ब्याह उसके साथ करना पड़ेगा ॥१५-१८॥”

दोनों ने उक्त शर्त स्वीकार की। इसके कुछ दिनों बाद सागरदत्त के घर पुत्रजन्म हुआ। उसका नाम वसुमित्र हुआ। पर उसमें एक बड़े भारी आश्चर्य की बात थी। वह यह कि वसुमित्र न जाने किस कर्म के उदय से रात के समय तो एक दिव्य मनुष्य होकर रहता और दिन में एक भयानक सर्प ॥१९॥

उधर समुद्रदत्त के घर कन्या हुई उसका नाम रखा गया नागदत्ता। वह बड़ी खूबसूरत सुन्दरी थी। उसके पिता ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उसका ब्याह वसुमित्र के साथ कर दिया। सच है—॥२०-२१॥

सत्पुरुष सैकड़ों कष्ट सह लेते हैं, पर अपनी प्रतिज्ञा से कभी विचलित नहीं होते। वसुमित्र का ब्याह हो गया। वह अब प्रतिदिन दिन में तो सर्प बनकर एक पिटारे में रहता और रात में एक दिव्य पुरुष होकर अपनी प्रिया के साथ सुखभोग करता। सचमुच संसार की विचित्र ही स्थिति होती है। इसी तरह उसे कई दिन बीत गए। एक दिन नागदत्ता की माता अपनी पुत्री को एक ओर तो यौवन अवस्था में पदार्पण करती हुई और दूसरी ओर उसके विपरीत भाग्य को देखकर दुःखी होकर बोली—हाय! कैसी विडम्बना है, जो कहाँ देवबाला सरीखी सुन्दरी मेरी पुत्री और कैसा उसका अभाग्य जो उसे पति मिला एक भयंकर सर्प? उसकी दुःख भरी आह को नागदत्ता ने सुन लिया। वह दौड़ी आकर अपनी माता से बोली—माता, इसके लिए दुःख आप क्यों करती हैं? मेरा जब भाग्य ही ऐसा था, तब उसके लिए दुःख करना व्यर्थ है और अभी मुझे विश्वास है कि मेरे स्वामी का इस दशा से उद्धार हो सकता है। इसके बाद नागदत्ता ने अपनी माता को स्वामी के उद्धार सम्बन्ध की बात समझा दी ॥२२-२६॥

तदाकर्ण्य समुद्रादिदत्ता गत्वा सुतागृहम्। रात्रौ पिष्टारके मुक्त्वा सर्पदेहं सुनिन्दितम् ॥२७॥
 धृत्वा मनुष्यसद्रूपं वसुमित्रे च निर्गते। सा प्रच्छन्नं तदा भस्मी-चक्रे पिष्टारकं सती ॥२८॥
 दाहिते च तदा तस्मिन्वसुमित्रो गुणोज्ज्वलः। भुञ्जानो विविधान्भोगान्सदाऽऽसौ पुरुषः स्थितः ॥२९॥
 तथैते देव तिष्ठन्ति विष्णुलोके निरन्तरम्। एतदर्थं मयारब्धो देहदाहस्तपस्विनाम् ॥३०॥
 तन्निशम्य महीनाथः श्रेणिकश्चेलनोदितम्। समर्थो नोत्तरं दातुं कोपान्मौनेन संस्थितः ॥३१॥
 अथैकदा नृपाधीशो गतः पापद्विहेतवे। तत्रातापनयोगस्थं यशोधरमहामुनिम् ॥३२॥
 समालोक्य महाकोपान्ममेमं विघ्नकारिणम्। मारयामीति संचिन्त्य मुक्तवान्कुक्कुरान्वृथा ॥३३॥
 गत्वा पञ्चशतान्युच्चैः कुक्कुरास्तेपि निष्ठुराः। यशोधरमुनेस्तस्य तपोमाहात्म्ययोगतः ॥३४॥
 कृत्वा प्रदक्षिणां पाद-मूले तस्थुः सुभक्तितः। क्रोधान्धेन पुनस्तेन बाणा मुक्ताः सुदारुणाः ॥३५॥
 तेऽपि बाणा बभूवुश्च पुष्पमालाः सुनिर्मलाः। प्रभावो मुनिनाथस्य महान्केनाऽत्र वर्ण्यते ॥३६॥
 तस्मिन्काले महीपालः सप्तमं नरकं प्रति। त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुर्बन्धं चक्रे सुकष्टदम् ॥३७॥
 ततः प्रभावमालोक्य मुनेः पादाम्बुजद्वयम्। प्रणम्य परया भक्त्या त्यक्त्वा दुष्टाशयं नृपः ॥३८॥

सदा के नियमानुसार आज भी रात के समय वसुमित्र अपना सर्प का शरीर छोड़कर मनुष्य रूप में आया और अपने शय्या-भवन में पहुँचा। इधर नागदत्ता छुपी हुई आकर वसुमित्र के पिटारे को वहाँ से उठा ले आई और उसे उसी समय उसने जला डाला। तब से वसुमित्र मनुष्यरूप में ही अपनी प्रिया के साथ सुख भोगता हुआ अपना समय आनन्द से बिताने लगा। नाथ! उसी तरह ये साधु भी निरन्तर विष्णुलोक में रहकर सुख भोगें यह मेरी इच्छा थी; इसलिए मैंने वैसे किया था। महारानी चेलना की कथा सुनकर श्रेणिक उत्तर तो कुछ नहीं दे सके, पर वे उस पर बहुत गुस्सा हुए और उपयुक्त समय न देखकर वे अपने क्रोध को उस समय दबा भी गए ॥२७-३१॥

एक दिन श्रेणिक शिकार के लिए गए हुए थे। उन्होंने वन में यशोधर मुनिराज को देखा। वे उस समय आतप योग धारण किए हुए थे। श्रेणिक ने उन्हें शिकार के लिए विघ्नरूप समझकर मारने का विचार किया और बड़े गुस्से में आकर अपने क्रूर शिकारी कुत्तों को उन पर छोड़ दिया। कुत्ते बड़ी निर्दयता के साथ मुनि को मारने को झपटे। पर मुनिराज की तपश्चर्या के प्रभाव से वे उन्हें कुछ कष्ट न पहुँचा सके। बल्कि उनकी प्रदक्षिणा देकर उनके पाँवों के पास खड़े रह गए। यह देख श्रेणिक को और भी क्रोध आया। उन्होंने क्रोधान्ध होकर मुनि पर शर चलाना आरम्भ किया। पर यह कैसा आश्चर्य जो शरों के द्वारा उन्हें कुछ क्षति न पहुँच कर वे ऐसे जान पड़े मानों किसी ने उन पर फूलों की वर्षा की है। सच बात यह है कि तपस्वियों का प्रभाव कह कौन सकता है? श्रेणिक ने मुनि हिंसारूप तीव्र परिणामों द्वारा उस समय सातवें नरक की आयु का बन्ध किया, जिसकी स्थिति तैंतीस सागर की है ॥३२-३७॥

इन सब अलौकिक घटनाओं को देखकर श्रेणिक का पत्थर के समान कठोर हृदय फल सा कोमल हो गया। उनके हृदय की सब दुष्टता निकलकर उसमें मुनि के प्रति पूज्यभाव पैदा हो गए।

पुण्येन पूर्णयोगोसौ यशोधरमहामुनिः। तत्त्वं जगाद जैनेन्द्रं सुरेन्द्राद्यैः प्रपूजितम् ॥३९॥
 तच्छ्रुत्वोपशमं सार-सम्यक्त्वं संगृहीतवान्। तदायुश्चतुराशीति-गुणवर्षसहस्रकम् ॥४०॥
 संचक्रे प्रथमे शीघ्रं नरके प्रस्तरादिमे। किं न स्याद्भव्यमुख्यानां शुभं सद्दर्शनागमे ॥४१॥
 ततः पादान्तिके चित्र-गुप्तनाम महामुनेः। क्षयोपशमिकं प्राप्य सम्यक्त्वं भक्तिनिर्भरः ॥४२॥
 वर्द्धमानजिनेन्द्रस्य पादमूले जगद्गुरोः। गृहीत्वा शुद्धसम्यक्त्वं क्षायिकं मुक्तिदायकम् ॥४३॥
 स्वीचक्रे तीर्थकृत्नाम त्रैलोक्येशैः समर्चितम्। तस्माच्छ्रेणिको भूपस्तीर्थेशः संभविष्यति ॥४४॥
 स जयति जिनदेवः केवलज्ञानदीपः सकलसुरनरेन्द्रैः खेचरेन्द्रैः प्रपूज्यः।
 यदुदितवरवाक्यैर्भाविताः स्वच्छचित्ते भवति विमललक्ष्मीनायकोऽसौ मनुष्यः ॥४५॥

इति कथाकोशे श्रीश्रेणिकनृपस्य कथा समाप्ता।

२०. पद्मरथस्य कथा

श्रीजिनं त्रिजगन्नाथैः समर्चितपदद्वयम्। नत्वा पद्मरथस्योच्चैर्जिनभक्तकथोच्यते ॥१॥
 देशेऽत्र मगधे रम्ये मिथिलायां महापुरि। राजा पद्मरथो जातो विख्यातो मुग्धमानसः ॥२॥

वे मुनिराज के पास गए और भक्ति से उन्होंने मुनि के चरणों को नमस्कार किया। यशोधर मुनिराज ने श्रेणिक के हित के लिए उपयुक्त समझकर उन्हें अहिंसामयी पवित्र जिनशासन का उपदेश दिया। उसका श्रेणिक के हृदय पर बहुत ही असर पड़ा। उनके परिणामों में विलक्षण परिवर्तन हुआ। उन्हें अपने कृतकर्म पर अत्यन्त पश्चाताप हुआ। मुनिराज के उपदेशानुसार उन्होंने सम्यक्त्व ग्रहण किया। इसके प्रभाव से, उन्होंने जो सातवें नरक की आयु का बन्ध किया था, वह उसी समय घटकर पहले नरक का रह गया, जहाँ स्थिति चौरासी हजार वर्षों की है। ठीक है सम्यग्दर्शन के प्रभाव से भव्यपुरुषों को क्या प्राप्त नहीं होता? ॥३८-४१॥

इसके बाद श्रेणिक ने श्रीचित्रगुप्त मुनिराज के पास क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया और अन्त में भगवान् वर्द्धमान स्वामी के द्वारा शुद्ध क्षायिक-सम्यक्त्व, जो कि मोक्ष का कारण है, प्राप्त कर पूज्य तीर्थकर नाम प्रकृति का बन्ध किया। श्रेणिक महाराज अब तीर्थकर होकर निर्वाण लाभ करेंगे। वे केवलज्ञानरूपी प्रदीप श्रीजिनभगवान् संसार में सदाकाल विद्यमान रहें, जो इन्द्र, देव, विद्याधर, चक्रवर्ती द्वारा पूज्य हैं और जिनके पवित्र उपदेश के हृदय में मनन और ग्रहण द्वारा मनुष्य निर्मल लक्ष्मी को प्राप्त करने का पात्र होता है, मोक्षलाभ करता है ॥४२-४५॥

२०. पद्मरथ राजा की कथा

इन्द्र, धरणेन्द्र, विद्याधर, राजा, महाराजाओं द्वारा पूज्य जिनभगवान् के चरणों को नमस्कार कर मैं पद्मरथ राजा की कथा लिखता हूँ, जो प्रसिद्ध जिनभक्त हुआ है ॥१॥

मगध देश के अन्तर्गत एक मिथिला नाम की सुन्दरी नगरी थी। उसके राजा थे पद्मरथ। वे बड़े बुद्धिमान् और राजनीति के अच्छे जानने वाले थे, उदार और परोपकारी थे। सुतरा वे खूब प्रसिद्ध थे ॥२॥